International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 948-950

युगीन चेतना और साकेत

पूनम
शोधार्थी, हिंदी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

''युग काल– प्रवाह का एक भाग है, जो किसी कार्य–विशेष या घटना से जुड़कर ही युग कहलाता है।''[1] इसका सीधा प्रभाव साहित्यकार के दिमाग पर पड़ता है। युग ही साहित्यकार की मानसिकता का निर्माण करता है। युग ही परिवर्तन की राह दर्शाता है। युग के परिवर्तनों और प्रभावों से प्रभावित होना उनके प्रति सजग रहना, उन्हें अपनी चेतना में आत्मसात करना और अपने युग के लिए चेतना के निर्देशन में भावाभिव्यक्ति करना साहित्यकार का युग बोध है।[2] साहित्यकार वर्तमान और अतीत की पृष्ठभूमि पर अपने साहित्य का निर्माण करते समय आने वाले युग के लिए नये मूल्यों के आयाम प्रस्तुत करता है तथा सुखद भविष्य की कल्पना करता है। किसी कालखंड को हम तभी युग कह सकते हैं जब उसे किसी देश अथवा कालखंड से जोड़ दिया जाए। युग किसी देश के इतिहास के साथ जुड़कर अपनी सार्थकता प्रकट करता है।[3]

समाज, सभ्यता, संस्कृति, कला, साहित्य और इतिहास सभी की आन्तरिक और बाह्य स्थितियों का बोधक युग होता है। 'युग' में वह 'आज' विद्यमान होता है तो अतीत का परिणाम और भविष्य का 'सूत्रधार' होता है।

'चेतना' शब्द का अर्थ बहुत ही व्यापक है। इसका साहित्य में 'बुद्धि', 'समझ', 'सोचना–विचारना', संज्ञा तथा ज्ञान आदि विविध अर्थों में प्रयोग हुआ है। वास्तव में युग–चेतना से तात्पर्य है युग विशेष की प्रवृत्ति अथवा युग विशेष में होने वाला जागरण। किसी भी युग की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक विचारधारा का उसी रूप में साहित्य में चित्रण युग–चेतना है। इन परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ–साथ सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मान्यतायें भी नवीन रूप धारण करती हैं और कुछ समय पश्चात् प्रचलित भावधारा की चारों ओर लहर फैल जाती है। इसी प्रचलित भावधारा को युग की चेतना की संज्ञा दी जाती है।[4]

किसी भी युग–परिवर्तन के परिचायक अनेक तत्व हो सकते हैं। इनमें से किसी एक के परिवर्तन से युग परिवर्तन हो जाता है। इस परिवर्तन के प्रमुख तत्व राजनीतिक, सामजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आदि होते हैं।

> ''केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
> उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।''

उपर्युक्त विचारधारा का अपने जीवन पर्यन्त पालन करने वाले कवि मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य में उनका युग अनेक वातायनों से झांकता दृष्टिगत होता है। उन्होंने युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से पराड.मुख होकर कोई रचना नहीं की, इसलिए उनके काव्य का विषय चाहे इतिहास से आया हो अथवा पुराणों से अनुगृहित हो, उसमें युग सापेक्ष गुंजन अवश्य प्राप्त होती है। तत्कालीन भारत पर अंग्रेजों ने न केवल राजनीतिक रूप से अधिकार कर रखा था वरन् उन्होंने यहाँ की धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना को भी झकझोर कर रख दिया था। ऐसे समय में यह आवश्यक हो गया था कि युग–परिस्थिति का वर्णन करते हुए निराश जनता के हृदय में सुप्त आत्मविश्वास की भावना को जगाया जाये क्योंकि आत्मविश्वास की कमी मनोबल को क्षीण कर उसकी संघर्ष शक्ति को विनष्ट कर देती है। इसलिए द्विवेदी जी ने काव्य–रचना हेतु राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना, नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण, मानवतावादी विचारधारा, नवीन नैतिक मानदण्डों की स्थापना, सामाजिक न्याय पर बल, लोकजीवन का वर्णन एवं सत्य तथा अहिंसा की स्थापना जैसे विषयों के चयन पर बल दिया। द्विवेद्वी जी के स्वप्न को साकार कलेवर में उतारने का कार्य मैथिलीशरण गुप्त ने किया और आजीवन उन आदर्शों के प्रति सजग रहे। उनकी यह सजगता ही उन्हें युग से विमुख नहीं होने देती।[5]

कोई भी साहित्यकार शून्य में काव्य की रचना नहीं करता। उसके जाने–अनजाने उसके चारों ओर की परिस्थितियाँ उस पर अपना प्रभाव डालती ही है जिससे किसी न किसी रूप में कवि अथवा साहित्यकार का व्यक्तित्व प्रभावित और अनुप्राणित होता है और उसके व्यक्तित्व की छाप उसकी कृति में दिखाई पड़ती है।

साहित्य एवं समाज का संबंध शाश्वत है। साहित्य समाज से पृथक रहकर अधिक जीवन्त नहीं रह सकता। मैथिलीशरण गुप्त भारतीय संस्कृति के आख्याता है। उन्होंने आधुनिक भारतीय जनता को अतीत संस्कृति के परमोज्जबल रूप का बोध कराकर एक महान साहित्यकार के दायित्व को निभाया है। साकेत में आद्यन्त किसी न किसी रूप में भारतीय संस्कृति के सामग्र रूप की अभिव्यंजना है– कहीं, पारिवारिक, राजनीतिक एवं भौतिक आदर्शों के रूप में, कहीं विश्वबन्धुत्व, मानवतावाद, कर्मवाद, समन्वयवाद जैसी दार्शनिक मान्यताओं के रूप में और कहीं नारी जागरण, अस्पृश्यता निवारण जैसे गाँधीवादी नीति से प्रेरित आंदोलनों के रूप में। संक्षेप में कहा जा सकता है कि साकेत जीवन के समग्र रूप को अभिव्यंजित करने का सफलतम प्रयास है। अतएव यह पारिवारिक चेतना और सामाजिक चेतना को तत्वों को प्रस्तुत करता है।

गुप्त जी संयुक्त पारिवारिक प्रथा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने परिवार में सम्मिलित रूप में ही रहने की कृतकृत्यता मानी है। वंश–विग्रह का अवसर आने पर वे अत्यन्त चिंतित हो उठते हैं। 'साकेत' में सीता ससैन्य भरत को आते देखकर कुल का कुशल मंगल मानने लगती है।[6] संयुक्त परिवार की नींव ही परस्पर त्याग एवं अनुराग तथा उदार व्यवहार पर अवलम्बित होती है। यह वह परमोज्जवल भाव है जिनसे समस्त विश्व अपने परिवार के समान प्रतीत होने लगता है। राम त्याग और अनुराग आवश्यक मानते हैं। 'साकेत' के आदर्श परिवार की नींव परस्पर त्याग, अनुराग एवं उदार व्यवहार पर आश्रित हैं। सभी का जीवन त्याग एवं अनुराग का जीवन्त स्वरूप है। यदि कौशल्या राम को वनवास मिल जाने

पर भी कुल की प्रतिष्ठा एवं शांति की कामना करती है तो कैकेयी राम एवं भरत में भेद करने पर मंथरा की कटु शब्दों में भर्त्सना करती हैं–

''उड़ाती है तू घर में कीच,
नीच ही होते हैं बस नीच।
हमारे आपस को व्यवहार
कहाँ से समझे तू अनुदार ?''[7]

एक सुव्यवस्थित परिवार के सभी लोग सुख एवं दुःख में रामभागी होते हैं। इससे सुख की भावना द्विगुणित होने के साथ कष्ट का भार हल्का हो जाता है। किसी एक को ही विपत्ति झेलने को नहीं छोड़ दिया जाता है। सब लोग परस्पर उसका सामना करते है। 'साकेत' के आदर्श परिवार में विपत्ति पड़ने पर सब लोग समभागी है तथा गुणों का श्रेय दूसरों को देकर दोषों का उत्तरदायित्व स्वयं लेते हैं–

''नाथ, देखती हूँ इस घर में
मैं तो इसमें ही संतोष
गुण अपर्ण करके औरों को,
लेना अपने सिर पर दोष।''[8]

गुप्त जी आदर्शवादी कवि थे। आधुनिक युग में कलह एवं विघटन की प्रवृत्ति लक्षित कर उन्होंने आदर्श संयुक्त परिवार की योजना की है। 'साकेत' का रघुकुल परिवार आदर्श स्वरूप है।

पति–पत्नी पारिवारिक जीवन की धुरी है। उनकी समान सत्ता से पारिवारिक जीवन सुचारू रूप से गतिशील होता है। 'साकेत' काव्य पति–पत्नी के मधुर भावपूर्ण सम्बंधों एवं कर्तव्यों का आख्यान है। राम–सीता, लक्ष्मण–उर्मिला, भरत–मांडवी तथा शत्रुघ्न–श्रुतिकीर्ति का सम्बन्ध अभिन्न है। पति–पत्नी जीवन–पर्यन्त सुख–दुःख के साथी होते हैं। परस्पर एक दूसरे से सुख–दुःख की व्यंजना कर वे उत्फुल्लता एवं प्रेरणा ग्रहण करते हैं। गुप्त जी ने उर्मिला के इन शब्दों में आदर्श पतित्व की व्याख्या की है–

''खोलती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम,
चाहती हैं एक तुम–सा पात्र हम,
आन्तरिक सुख–दुःख हम जिसमें धरें,
और निज भव–भार यों हल्का करें।''[9]

गुप्त जी केवल पत्नी की ही योग्यता नहीं, अपितु पत्नी के अनुरूप पति की योग्यता को भी आवश्यक मानते हैं। प्राचीन काल में पति कैसा भी हो, उसके साथ एकनिष्ठ रहने की अपेक्षा की जाती थी किन्तु आधुनिक युग में नवजागृति के परिणाम स्वरूप पति को भी पत्नी के अनुरूप होना आवश्यक माना गया। गुप्त जी ने अपने युग की चेतना को ग्रहण किया है। लक्ष्मण उर्मिला से उसके योग्य बनने के लिए कहते हैं–

''वन में तनिक तपस्या कारके
बनने दो मुझको निज योग्य
भाभी को भगिनी, तुम मेरे,
अर्थ नहीं केवल उपभोग्य।''[11]

नारी की एकनिष्ठता को गुप्त जी पुरूषों में भी देखने के इच्छुक हैं। पत्नी केवल पति के लिए योग्य ही नहीं वह मंत्रिणी एवं सहगामिनी भी है। वह प्रबंधिका एवं प्रेरिका भी हो सकती है। गुप्त जी ने साकेत में भी नारी के इन रूपों का चित्रण किया है। कौशल्या दशरथ के मोहग्रस्त हो जाने पर प्रबोधन देती है। मांडवी भरत के ग्लानि से व्यथित हो उठने पर उन्हें सान्त्वना देती है।

इस प्रकार प्राचीन आदर्शों के साथ गुप्त जी ने नवयुग की चेतना भी ग्रहण की है। युगीन नारी शिक्षित है। वह विचार विमर्श एवं तर्क वितर्क करती है और अपने पृथक विचार रखने के लिए स्वतन्त्र है। वह बौद्धिक दृष्टि से मध्ययुगीन नारी से अधिक श्रेष्ठ हैं।

समाज में विधवा नारियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय रही है। उनका जीवन यातना, शोषण, अपमान, उपेक्षा एवं प्रताड़ना का शिकार रहा है। उसके आँसुओं और हाहाकार करते ह्रदय की जितनी भी गाथा लिखी जाये, वह कम है। पति की मृत्यु के उपरान्त उनसे यह आशा की जाती रही है कि वे समस्त भोग–विलासों से विरत रहकर पूजा–पाठ करते हुए अपना जीवन बिताएं। गुप्त जी का दृष्टिकोण विधवाओं के प्रति अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण है। ईश्वर से भी उसके मन–सम्मान की रक्षा की याचना की है। साकेत में वे वशिष्ठ के शब्दों में विधवाओं के भव्य भाव की प्रशंसा करते हैं–

''देवियों, ऐसा नहीं वैधन्य
भाव भव में कौन वैसा भव्य?
धन्य वह अनुराग निर्गत–राग,
और शुचिता का अपूर्व सुहाग।
अग्निमय है अब तुम्हारा नाम,
दग्ध हो जिसमें स्वयं सब काम।''[12]

संतान माता–पिता के लिए प्राण होती है। वे माता–पिता के जीवन को अपूर्व आनन्द से सराबोर होती है। गुप्त जी के काव्य में चित्रित परिवार में मात–पिता अपने पुत्रों पर प्राण छिड़कते और अपने दायित्व का निर्वाह करते दिखाई पड़ते हैं। राम के वनवास पर चले जाने पर उनके वियोग में वह अपने प्राण तक त्याग देते हैं। साकेत में एक संयुक्त परिवार का चित्रांकन हुआ है, जिसमें मातायें ही नहीं विमातायें भी है। विमाता का पुत्र के प्रति स्नहे का आदर्श रूप इसमें अभिव्यक्ति पा सकता है। माता कौशल्या पुत्र राम के वनवास का समाचार सुनकर दशरथ से उनकी अपराध की मुक्ति के लिए भिक्षा तक मांगने को तत्पर हो जाती है।[13] संयुक्त परिवारों में प्रायः ऐसा होता है कि संतान अपने माता–पिता के पास न रहकर किसी अन्य सदस्य के पास अधिक रहती है। साकेत में इस स्थिति का सुन्दर चित्रण हुआ है। जो कुहिकिनी अपना कुहुक, राम यह जागा, निज मंझली माँ का स्वप्न देख उठ भागा।[14]

कौशल्या को इन शब्दों में कैकेयी का राम के ऊपर असीम ममत्व प्रकट होता है। 'साकेत' का सम्पूर्ण चित्रकूट प्रसंग कैकेयी के प्रगाढ़ वात्सल्य का द्योतक है। कैकेयी की घोर ग्लानि, आत्म भर्त्सना और दीनता को चरम का स्पर्श करती हुई याचना में निहित ममत्व का मार्मिक रूप अद्वितीय है। सुमित्रा में एक आदर्श वीर माता के दर्शन होते हैं। वह अपने पुत्र को राम के साथ सहर्ष वन भेज देती हैं। वह राम–रावण युद्ध को समय सहायतार्थ जाने को तत्पर– शत्रुघ्न को भी रोकना उचित नहीं समझती।

गुप्त जी द्वारा चित्रित परिवारों में पुत्रियों को भी उचित सम्मानपूर्ण स्थान मिला है। 'साकेत' में सीता आदि चारों बहनों की बाल्यावस्था का संकेत दिया गया है। ये चारों पुत्रियाँ ब्रह्मा की चार मूर्तियों के समान हैं।[15]

यद्यपि युग में पुत्रों में प्राचीन काल के समान माता–पिता के प्रति कर्तव्य की भावना नहीं मिलती किन्तु गुप्त ने अधिकांशतः प्राचीन कथानकों को ग्रहण किया है अतएव उनके काव्य में सर्वत्र

माता–पिता' और पुत्रों के आदर्श सम्बंधों का निर्वाह हुआ है। यद्यपित लक्ष्मण विजयी एवं आज्ञाकारी है किन्तु वे अन्याय सहन नहीं कर पाते। राम का वनवास उन्हें कैकेयी का स्वार्थ एवं अन्याय प्रतीत होता है। इसलिए वे अत्यन्त उग्र शब्दों में कैकेयी की भर्त्सना करते हैं–

''खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह,
अनार्या की जनी, हतभागिनी यह,
अभी विषदन्त इसके तोड़ दूँगा,
बने इस दस्युजा के दास हैं जो
पिता हैं वे हमारे या कहूँ क्या?''[16]

संयुक्त परिवारों में पति–पत्नी और सन्तानों के अतिरिक्त अन्य सदस्य भी निवास करते हैं। उनसे सम्बंधों का निर्वाह परिवार में माधुर्य की सृष्टि करता है और आधुनिक काल में रीतिकालीन परिवेश से बाहर निकलकर आयी नारी के प्रति स्वस्थ दृष्किोण का भी परिचय मिलता है। स्नेयमय भ्रातृ सम्बन्ध पारिवारिक शांति की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। परिवार मे भाई का सबसे बड़ा सहयोगी भाई होता है। भाई से मधुर संबंध न रहने पर कितने ही परिवार कलह का केन्द्र बन जाते हैं। आज संयुक्त परिवारों में विघटन का एक प्रमुख कारण यह भी है इसलिए आदर्श भ्रातृ–भावना इस विश्व में राज्य से भी अधिक मूल्यवान है। गुप्त जी ने 'साकेत' के माध्यम से आदर्श भ्रातृ संबंध का उदाहरण उपस्थित किया है, राम आदि चारों भाईयों में अथाह प्रेम है। राम किसी भी अधिकार का अकेले उपभोग नहीं करना चाहते। बाल्यावस्था में तो चारों का प्रत्येक वस्तु पर समानाधिकार रहा है। राम भी राज्य सबके सहयोग के साथ करना चाहते हैं। वे अपने को केवल दायित्व का निर्वाह मात्र समझते हैं–

'''रहेगा साधु भरत का मन्त्र,
मनस्वी लक्ष्मण का बल–तंत्र
तुम्हारे लघु देवर का धाम,
मात्र दायित्व हेतु है राम।''[17]

गुप्त जी का काव्य सर्वत्र चेतना का संवाहक है। विकासोन्मुख युग–जीवन को वाणी देने के कारण ही वे 'युग कवि' आधुनिक युग के प्रतिनिध कवि कहे गये हैं। उन्होंने अपने युग धर्म को पहचाना और उसके आदर्शों को, भावों को, उज्जवल जीवन की कल्पनाओं को पूर्णतः साकार कर दिया। उनके काव्यों में उनका युग प्रकाशमान हो उठा है। भारत की जनता का हर्ष, शोक और हार्दिक छटपटाहट उनके काव्य में निनादित है। युग–चेतना के अंकन में सामयिकता के साथ पुरतनता का आवश्यक योगदान रहता है। सामयिक मूल्यों का सृजन वह स्वयं करता चलता है और पुरातन उसे परम्परा के रूप में विरासत में प्राप्त होता है। एक सजग युग कवि की यही भूमिका होती है कि वह आधुनिकता–प्राचीनता के दुराग्रह में न पड़कर उदात एवं व्यापक दृष्टिकोण अपनाकर 'श्रेष्ठ' का चयन करे और उसे अपने काव्यों में रूपायित करे। कभी–कभी युग के वर्तमान पर अनाचार, उत्पीड़न, अन्याय हावी होकर उसे दिशाहीन कर देते हैं। ऐसे में एक उत्तरदायी कवि का धर्म होता है कि वह इनके विरूद्ध आवाज उठाकर युग को वह आलोक दे। जिसमें युग अपनी गति की दिशा पा सके। यदि गुप्त में प्राचीन के प्रति श्रद्धा भाव है तो नवीन को अपनाने की ललक भी। मानव के उत्कर्ष के लिए वे प्राचीन आदर्शों का आख्यान करते हैं तो अपने समय को हीन न समझने की प्रेरणा भी देते हैं। यह अवश्य है कि उन्होंने उन्हीं नवीन मूल्यों का समर्थन किया है जो मानवता की प्रगति में सहायक हो सकते हैं।

सन्दर्भ

1. त्रिलोक चन्द्र तुलसी, परिवेश, मन और साहित्य, पृ0–5
2. डॉ0 महेन्द्रपाली कौशिक, छायावादी काव्य में युग चेतना और सामाजिक व्यंग्य, पृ0–13–14
3. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग–चेतना, पृ0–6
4. हिंदी शब्द सागर, भाग–8 पृ0–4071
   डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त, साहित्य : सिद्धान्त और समालोचना, पृ0–215
5. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ0–238
6. साकेत, द्वितीय सर्ग पृ0–47
7. वही, एकादश सर्ग, पृ0–408
8. साकेत, प्रथम सर्ग, पृ0–32
9. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ0–285
10. साकेत, सप्तम सर्ग, पृ0–285
11. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ0–252
12. साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ0–100
13. साकेत, प्रथम सर्ग, पृ0–19
14. साकेत, तृतीय सर्ग, पृ0–78–79
15. साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ0–57